IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

ब्रिटिश शासन में दलित

मोहिनी कुमारी
शोध अध्येता
स्नातकोत्तर इतिहास विभाग
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सारांश–: अस्पृश्यता भारतीय समाज की पुरातन व्यवस्था थी जो ब्रिटिश औपनिवेशिक भारत में दलित प्रश्न के रूप में ऊभरी थी। जब औपनिवेशिक शासन के खिलाफ संघर्ष की शुरुआत हुई, तब वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की कमजोरियों का आंकलन, विश्लेषण तथा उनके निवारण की कोशिश भी तेज हुई। प्रश्न यह उठा कि आखिर क्या कारण था कि मुट्ठी भर फिरंगी ताकतों ने इस विशाल देश को गुलाम बना दिया। उत्तर था भारतीय समाज का विखंडन। अंग्रेजों ने भारतीय समाज की अंदरुनी कमजोरियों के सहारे ही भारत पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था। प्रबुद्ध भारतवासियो के बीच गहन आत्म–मंथन का दौर चला और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बगैर भारतीय समाज की पुनर्रचना के भारत स्वतंत्रता के काबिल नहीं हो सकता। स्वंतत्रता के लिये सार्वजनिक आंदोलन और समाज के रुपांतर का संघर्ष एक साथ लेकर चलना होगा और भारतीय समाज की पुनर्रचना की दिशा में अहम प्रश्न था अछूत प्रश्न।

कुंजीशब्दः भारतीय समाज, ब्रिटिश, अस्पृश्यता, कमियां प्रथा, पुनर्रचना

प्रस्तावना–: अस्पृश्यता हमारे भारतीय समाज की काफी पुरानी समस्या हैं। ब्रिटिश भारत में (बर्मा को छोड़कर) अछूतों की आबादी कुल आबादी की करीब 20 फीसदी थी।(1) ये अछूत जातीय सोपान पर सबसे निचले पायदान पर थे– उन्हें कोई सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था। मैला–कूड़ा–कचरा साफ करने से लेकर खेतों में हलवाही करने तक सेवा व उत्पादन में अपने योगदान के बावजूद वे अन्य हिन्दुओं के लिये अछूत थे, उनसे उनका खाना–पीना दूषित होता था। उन्हें पृथक टोलों में अलग–थलग रखा जाता था। मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित था, कुंओं तथा तालाबों से तथा स्कूलों में पानी नहीं लेने दिया जाता था। वे ऐसा खाना खाते जिसे समुदाय के दूसरे हिस्से छूने तक से परहेज करते। उनपर गाहे–बगाहे जुल्म ढाये जाते। उनसे गाली–गलौज के बिना लाग बात तक नहीं करते, और उनका सब कुछ सवर्ण समुदायों की मर्जी पर निर्भर था।

औपनिवेशिक काल के अनेक सर्वेक्षणों, यात्रा–वृतांतों और जिला रिर्पोटों में इन अछूत समुदायों का काफी वर्णन मिलता है, तथापि व्यवस्थित रूप से इन समुदायों का वर्गीकरण बीसवीं सदी के आरंभ की जनगणनाओं के दौरान ही किया गया।

रिस्ले ने 1901 की जनगणना के दौरान जाति की एक अनुक्रमिक सूची बनाने का असफल प्रयास किया था। 1911 की जनगणना में यद्यपि "दलित वर्ग" शब्दावली का प्रयोग नहीं था तथापि ऐसे जाति–समूहों को वर्गीकृत करने की कोषिष की गई जिनकी संख्या प्रति हजार आबादी में एक से अधिक हो और जो किसी निश्चित धार्मिक मानदंडो पर खरे नहीं उतरते हों अथवा जो कुछ धार्मिक अयोग्यताओं के शिकार रहे हों। उदाहरण के लिये ऐसे लोग जो–

(क) ब्राम्हणों के प्रभुत्व को नहीं मानते

(ख) ब्राम्हण अथवा अन्य मान्य हिन्दू गुरू जिन्हें मंत्र–दीक्षा नहीं देते

(ग) वेदों को नहीं मानते

(घ) प्रमुख हिन्दू ईश्वरों की उपासना नहीं करते

(ड.) अच्छे ब्राम्हण जिन्हें पुरोहित के रूप में अपनी सेवायें नहीं देते

(च) जिनका अपना कोई ब्राम्हण पुरोहित नहीं होता

(छ) आम हिन्दू मंदिरो के गर्भ–गृहों में जिनका प्रवेश वर्जित हैं

(ज) जिनके स्पर्श से अथवा एक निश्चित दूरी पर जिनकी उपस्थिति से लोग अपवित्र हो जाते हैं (आम भाषा में 'छुआ' जाते हैं)

(झ) जो अपने मृतको को दफनाते हैं और

(ञ) जो गाय की पूजा नहीं करते और जो गोमांस खाते हैं।(2)

1911 के बाद 1921 की जनगणना के दौरान भी अछूत जातियों के वर्गीकरण पर अस्पष्टता बनी रही। 1931 की जनगणना से पूर्व साइमन कमीशन की रिपोर्ट में दलित वर्गों की स्थिति का वर्णन किया गया था। इसमें अस्पृश्यता की समस्या के दृष्टिकोण से बर्मा सहित पूरे भारत को 6 हिस्सों में बांट कर समझने की कोशीश की गई। जिसे निम्न रूप में हम दिखा सकते है–

1. मद्रास और मालाबार– सामाजिक बहिस्कार संबंधी सबसे अधिक उदाहरण इन्हीं प्रदेशों में पाये जाते हैं।

2. बम्बई और मध्य प्रान्त– यहां समस्या थोड़ी कम जरूर हैं परंतु मद्रास की स्थिति से तुलनीय हैं।

3. बंगाल, बिहार और उड़ीसा तथा संयुक्तप्रांत– यहां दक्षिण जैसी स्थिति तो नहीं हैं पर समस्या को नजरअंदाज करना भूल होगी।

4. पंजाब– यहां जातीय भेदभाव बहुत कठोर नहीं हैं। यहां अस्पृश्यता की समस्या को सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या से पृथक करना कठिन हैं।

5. असम– यहां पर कोई अलग समस्या नहीं दिखाई पड़ती। इस प्रान्त में हिन्दू धर्म अपेक्षाकृत नया हैं और अस्पृश्य हिंदुओं तथा हिन्दू प्रात के बाहर आदिम जनजातियों के बीच फर्क करना मुश्किल हैं।

6. बर्मा– यहां जातीय भेद नहीं के बराबर हैं।

कमीशन ने बिहार और उड़ीसा में दलित वर्गों की आबादी 50 लाख बताई थी जो कुल आबादी का 14.5 प्रतिशत और हिन्दू आबादी का 20 प्रतिषत थी। बर्मा को छोड़कर बाकी प्रदेशों मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, मध्य प्रान्त तथा असम में दलित वर्गों की जनसंख्या, आयोग के अनुसार, 4.66 करोड़ थी जो कुल आबादी का 19 प्रतिशत और हिन्दू आबादी का 28.5 प्रतिशत थी। हिन्दू आबादी में अपराधी जनजातियों और आंशिक रूप से हिन्दू जनजातियों की संख्या शामिल नहीं की गई थी।(3)

दलित वर्गों का वर्गीकरण और उनकी गणना का काम काफी विवास्पद और जटिल रहा। तथापि, 1931 की जनगणना को ही, कुछेक विवादों के बावजूद, प्रायः प्रामाणिक माना जाता हैं और उसे ही संदर्भ के रूप में आमतौर पर उद्धृत किया जाता हैं। अस्पृश्यता के प्रश्न पर मद्रास में प्रचलित प्रथायें संदर्भ का काम करती थी।

1931 की जनगणना में भी अस्पृश्यता के नौ मानदण्ड रखे गये–

1. क्या शुद्ध ब्राम्हण संबंधित जाति अथवा वर्ग को अपनी सेवायें प्रदान करते है?

2. क्या सवर्ण हिन्दुओं को अपनी सेवा प्रदान करने वाले नाई, दर्जी, पानी–पंडित, आदि संबंधित जाति अथवा वर्ग को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं?

3. क्या संबंधित जातियों/वर्गों के स्पर्ष अथवा संपर्क के सवर्ण हिन्दू दूषित होता हैं?

4. क्या संबंधित जातियों/वर्गों के हाथों सवर्ण हिन्दू पानी ग्रहण करते हैं?

5. क्या संबंधित जातियों/वर्गों को सार्वजनिक उपयोग की चीजों, जैसे–सड़क, फेरी, कुआँ अथवा स्कूल का उपयोग करने से मना किया जाता है?

6. क्या उन्हें हिन्दू मंदिरों में प्रवेश करने दिया जाता है?

7. क्या रोजमर्रे के सामाजिक जीवन में इन जातियों के लोगों के साथ समान शैक्षणिक योग्यता वाले सवर्ण लोगों जैसा बर्ताव किया जाता है?

8. क्या वे सिर्फ अपनी अज्ञानता, निरक्षता और दरिद्रता के कारण दलित हैं, और अगर उपर्युक्त स्थितियाँ न हों तो उन्हें किसी समाजिक अयोग्यता का शिकार नहीं होना पड़ेगाा?

9. क्या उन्हें महज उनके पेशे के कारण दलित माना जाता है, अगर उनका पेशा बदल दिया जाए तो उनकी सामाजिक अयोग्यता समाप्त हो जाएगी?

1931 की जनगणना में इन दलित वर्गो को बाह्य जातियों के रूप के रूप में वर्णित किया गया। बिहार और उड़ीसा प्रदेश में कुल 31 जातियों को अस्पृश्य जातियों के रूप में चिह्नित किया गया जिनकी कुल आबादी थी 65,10,1921। ये जातियाँ उन दिनों प्रांत की कुल आबादी का 15.5 और हिन्दू आबादी का 18.5 प्रतिषत थीं। इनमें से चार जातियों– दुसाध, चमार, मुसहर, और भुइया की संख्या ही करीब 40 लाख थी। धोबी (4,14,221), पान (4,11,770), बाउरी (3,14,979), डोम(2,69,340), पासी (1,72,061) और रजवार (1,33,935) अन्य प्रमुख दलित जातियाँ थीं(4)

1931 के गोलमेज सम्मेलन के समय ब्रिटिश सरकार ने दलित वर्गो की अनुसूची तैयार की थी, जिसे बाद में भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसार 1936 आर्डर–इन–काउन्सिल में शामिल कर लिया गया। इसी कारण, संवैधानिक भाषा में दलित वर्गो को अनुसूचित जातियों के रूप में भी संबोधित किया जाने लगा।

उड़ीसा के अलग होने के बाद, '41 की जनगणना में बिहार की दलित जातियों की कुल आबादी थी 43,40,379। आबादी के बाद कराई गई पहली जनगणना (1951) में दलित जातियों की कुल आबादी 50,57,812 दर्ज की गई जो बिहार की कुल आबादी (4,02,25,947) का 12.6 प्रतिषत थी। तब बिहार 16 जिलों और 2 उप जिलों (धनबाद और जमषेदपुर) में बँटा था। प्रतिशत के लिहाज से सबसे अधिक दलित आबादी मंगेर और गया जिले में बसती थी (16 प्रतिषत)। इसके बाद क्रमषः मुजफ्फरपुर (15.5 प्रतिषत) और पटना (15.4 प्रतिषत) का स्थान आता था। जनसंख्या के लिहाज से दरभंगाा दलितों की सबसे अधिक आबादीवाला (5,22,800; 15 प्रतिषत) जिला था। इसके बाद गया, मुंगेर, चंपारण, शाहाबाद, भागलपुर और पटना जिले का स्थान आता था। इन सभी जिलों में दलितों की आबादी तीन लाख से ऊपर थी। नौ दलित जातियों– दुसाध, चमार, मुसहर, भूइया, धोबी, पासी, बाउरी, डोम रजवार– की आबादी ही कुल दलित आबादी का 96.5 प्रतिशत थी। कुल दलित आबादी का 47.3 प्रतिषत उत्तर बिहार में, 35.1 प्रतिषत दक्षिण बिहार में और मात्र 17.6 प्रतिषत छोटानागपुर में निवास करता था।(5)

बीसवीं सदी के आरंभ में बिहार और उड़ीसा प्रदेष के गठन के समय अछूतों की काफी बड़ी संख्या **कमिया** थी। उनकी कई समूहों को 'क्रिमिनल ट्राइब' के रूप में वर्गीकृत किया गया था और उनकी पूरी आबादी निरक्षर थी। अछूतों की आबादी का आधा से अधिक भाग खेत मजदूरों का था और इन खेत–मजदूरों का आधा से भी अधिक बँधुआ मजदूर अथवा कमिया था। **कमिया ऐसे भूमिहीन श्रमिक थे जो एक ही मालिक की सेवा करने से बंधे होते।** शादी–ब्याह, बीमारी के ईलाज, आर्थिक तंगी अथवा भुखमरी की स्थिति में जमींदारों या धनी रैयतों से कर्ज लेते समय उनसे यह बॉण्ड लिखाया जाता कि जब तक वह कर्ज की राशि चुका नहीं देता, तब तक वह, उसकी पत्नी, उसकी आने वाली पीढ़ी कर्ज देने वाले के यहाँ काम करती रहेगी, किसी दूसरे के यहाँ नही।(6) अगर, कोई दूसरा मालिक कमिया के कर्ज का भुगतान कर देता, तो वह इस नये मालिक का कमिया हो जाता था। कागज समेत बॉण्ड की लिखाई का खर्च भी कर्ज ली गई राशि में जोड़ दिया जाता था।

अंग्रेजी शासन में दलित उत्पीड़न संबंधी पहला उदाहरण

बंगाल पर ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित होने के बाद कंपनी के अधिकारियों ने कमिया प्रथा को मान्यता दे रखी थी। इससे संबधित मामला जब पहली बार 1798 ई० में आया तो अदालत ने 'प्रचलित हिन्दू और मुस्लिम कानून की भावना से मेल खाने के कारण' इसे न्यायोचित करार दिया। इसी साल गवर्नर जनरल ने भी इस फैसले पर अपनी मुहर लगा दी।

1811 ई० में दिल्ली में पदस्थापित एक ब्रिटिश अधिकारी ने दासता पर प्रतिबंध लगाने का आदेश जारी किया, लेकिन इस आदेश का कोई असर नहीं हुआ। 1819 में राजस्व के बकाए के लिए दासों के बेचे जाने की प्रथा पर मद्रास में रोक लगाने की घोषणा की गई। 1837 के आस–पास क्रिमिनल लॉ कमीशन ने दासता के पूरे प्रश्न की जाँच–पड़ताल की। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारत में भू–दासों की कुल आबादी देश की कुल आबादी के 1/6 से 2/5 के बीच आँकी और यह पाया कि ये दास विरासत में प्राप्त किए जाते हैं और उन्हें हस्तांतरणीय संपत्ति माना जाता है। इस आयोग की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप 1843 का एक्ट अ अस्तित्व में आया। इस अधिनियम के अंतर्गत दास प्रथा पर प्रतिबंध लगाने की कोई कोशीश तो नहीं की गई; हाँ, इन दासों को कुछ सुरक्षा और स्वतंत्र लोगों की तरह कुछ सुविधाएँ देने भर का काम किया गया।

दो वर्ष बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के डायरेक्टरों ने एक ऐसी घोषणा को अपनी सम्मति दे दी जिससे मालाबार में कृषि दासता का उन्मूलन करने का रास्ता साफ हो गया, तथापि दंड संहिता बनने तक इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया। कृषि दासता के उन्मूलन के लिए प्रयासों की शुरूआत का कारण भी कुछ और था। इस समय तक रेलवे का निर्माण कार्य षुरू हो गया था और अधिकारियों को इसके लिए मजदूर जुटाने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा था। बँधुआ प्रथा की मौजूदगी के कारण स्वतंत्र मजदूरों की आपूर्ति बाधित होती थी।(7) इन बाधाओं को दूर करने के लिए 1859 और 1860 में फ्रॉडुलेंट वर्कमेंस एक्ट और पब्लिक वर्क्स एक्ट अस्तित्व में आया। पुनः 1861 में भारतीय दंड संहिता ने उन दिनों प्रचलित दासता की इस प्रथा पर पहली चोट की, लेकिन इस संहिता में भी 'दासता' को परिभाषित नहीं किया गया। परिणामस्वरूप यह निश्चित नहीं हो पाया कि आखिर यह संहिता कृषि भू–दासता के मामले में कहाँ तक लागू होने लायक है (अथवा हो सकती है)।

सुझावः कमिया प्रथा समाप्त करने के लिए बंदोबस्त अधिकारी ब्रिज ने निम्नलिखित सुझाव रखे थेः

(क) काश्तकारी कानून का सक्रियता से पालन;

(ख) अभी भी काफी ऐसी जमीन परती पड़ी है, जिन्हें खेती लायक बनाया जा सकता है। कमियों, गरीब जनजातियों, अर्ध–जनजातियों को ऐसी जमीन पर बसाकर उन्हें नई जिंदगी शुरू करने का मौका दिया जाए। इसी तरह संरक्षित वनों को छोड़कर अन्य वन क्षेत्रों को इन कमियों के लिए खोल देना चाहिए। साथ ही यह घोषणा की जानी चाहिए कि सरकारी

गाँवों में कुछ खास जाति के रैयतों से अगले सर्वे–सेट्लमेंट तक कोई लगान नहीं लिया जाएगा। नए खेत तैयार करने के लिए उन्हें इजाजत लेने की जरूरत नहीं होगी, और इस प्रकार अमलों तथा म्यूटेशन पेशकारों के हस्तक्षेप से उन्हें बचाना होगा;

(ग) कार्यपालिका के आदेश से या विधेयक बनाकर यह सार्वजनिक घोषणा की जानी चाहिए कि कमियों का

कर्ज रद्द किया जाता है। ऐसे भी अगर कमियों के द्वारा किए गए श्रम का मूल्यांकन किया जाए तो मालिक की सेवा शुरू करने के एक साल के अंदर ही कमिया अपने ऋण का कई गुणा अपने मालिकों को अदा कर चुका है। कमियौती इकरारनामों का कानून की नजर में कोई मोल नहीं है। इन इकरारनामों (बॉण्ड्स) का लक्ष्य ही सार्वजनिक नीति के विरूद्ध आपराधिक और गैरकानूनी है।

(घ) भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत कमियौती दासता है या नहीं, सरकार को इस बारे में अपना आधिकारिक रूख स्पष्ट कर देना जरूरी है।

(ड.) सरकारी जागीरों में भी इन सारे कदमों का कड़ाई से पालन करना चाहिए।

(च) लाह–कर खत्म कर देना चाहिए, और जमींदारों द्वारा रैयतों से जबरन लाह उत्पादन रोका जाना चाहिए।(8)

इसके अलावा भी कुछ सुझाव थे, जो उन दिनों के आला अधिकारियों को पसंद नहीं आए। कमिया प्रथा की आलोचना और उसके खिलाफ कुछ सुधारमूलक कदम उठाने की जरूरत से सहमत होते हुए भी मि. ब्रिज के विचार इन आला अधिकारियों की नजर में कुछ ज्यादा ही 'रैडिकल' थे। कमिया प्रथा के उन्मूलन के लिय मि. ब्रिज के अति उत्साह से वे लाग सहमत नहीं थे। उनके रिपोर्ट और सुझावों पर कुछ अधिकारियों जिसमें आर.जी.किल्बी, बी. फोली, पी. डब्ल्यू. मर्फी, जे. ए. स्वीजी ने कड़ी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

1919 में बिहार और उड़ीसा विधान परिषद में कमियौती प्रथा की बुराईयों को दूर करने के लिए एक विधेयक लाया गया– दि बिहार एंड उड़ीसा एग्रोकल्चरल लेबर्स बिल, 1919। जिसे बिहार और उड़ीसा के प्रथम विधान परिषद में सर वाल्टर मॉड ने पेष करते हुए कहा कि 'इस बिल का उद्देश्य इस प्रदेश में आमतौर पर की जाने वाली कमियौती प्रथा की बुराइयों को जहा तक संभव और उचित हो, कम करना हैं।

उपसंहार–: इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य कमियौती प्रथा समाप्त करना नहीं था, बल्कि उसकी अमानुशिक ज्यादतियों को थोड़ा कम करना था। असल में ब्रिटिश सरकार बिहार के जमींदारों की नाराजगी नहीं झेलना चाहती थी, जिन्होंने उन दिनों कमियौती अधिनियम 1919 के खिलाफ मुहिम छेड़ रखी थी।

संदर्भ सूची

(1) सिंह, अयोध्या, ***भारत का मुक्ति संग्राम***, खंड प्रथम, कोलकाता, 1973, च्62

(2) चौधरी प्रसन्न कुमार एवं श्री कान्त, ***स्वर्ग पर धावा; बिहार में दलित आंदोलन***,वाणी प्रकाशन,2005, च्12

(3) झा जटाशंकर, ***रिजनल रेकर्ड सर्वे कमिटी***, बिहार (1965–67), च्80-81

(4) दि क्रिमिनल टाइम्स एक्ट मैनुअल, बिहार एण्ड उड़ीसा (1929), पटना, 1930, च्18

(5) राम. चन्द्रिका, ***हिरजन क्या चाहते हैं, हुंकार,*** 1945ए च्17

(6) झा. हेतुकर, ***प्रोसिजेजे एंड लैप्सेसः अंडरस्टैडिंग दि एक्सपिरिएन्स ऑफ षेड्यूल कास्टस इन बिहार इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव***, जर्नल ऑफ इंडियन स्कूल ऑफ पोलिटिकल इकॉनामी, खंड ग्प्, सं. 3–4, जुलाई दिसंबर, 2000

(7) अग्रवाल जी. के, ***भारतीय सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन***, आगरा बुक स्टोर, आगरा, 1986, च्36

(8) चौधरी प्रसन्न कुमार एवं श्रीकान्त, ***स्वर्ग पर धावा; बिहार में दलित आंदोलन***, वाणी प्रकाषन, 2005एच्च 34-35